R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-19, अङ्क-7 जुलाई 2019 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

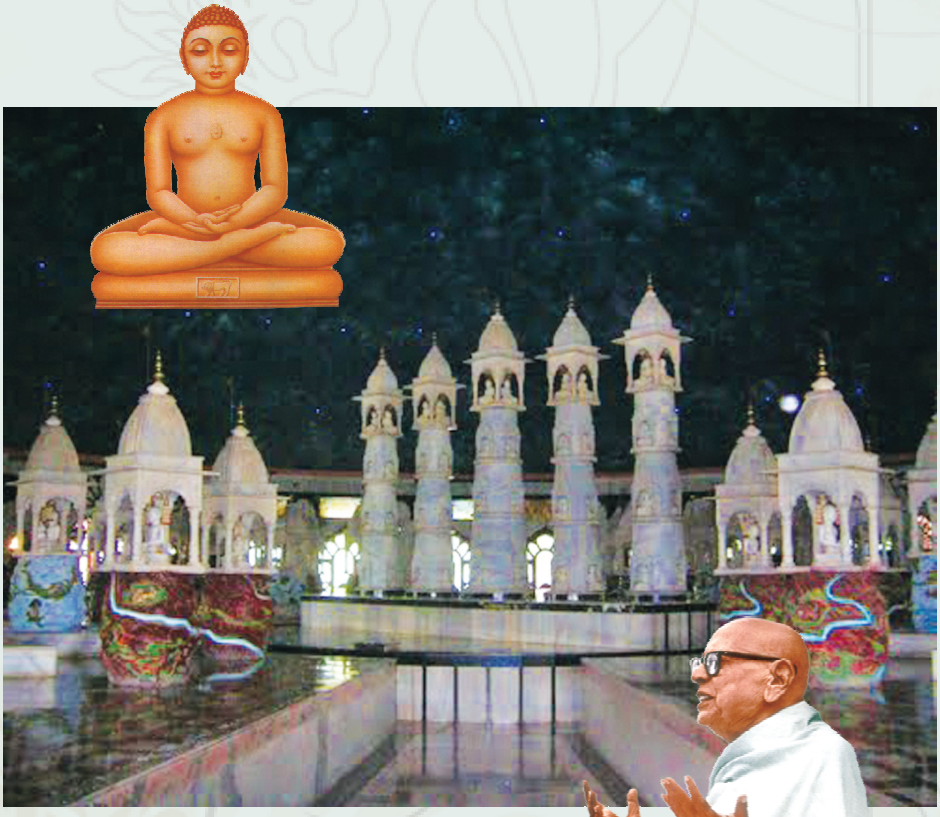

नन्दीश्वर द्वीप जिनालय

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं
कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

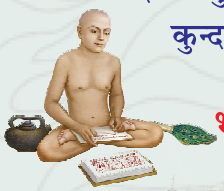

के संयुक्त तत्त्वावधान में

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं
आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(गुरुवार, 24 अक्टूबर से सोमवार, 28 अक्टूबर 2019)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं शिक्षण शिविर अध्यात्म, सिद्धान्त एवं जिनवरों की भक्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।

विद्वत समागम - दादाश्री विमलचंद झांझरी, उज्जैन; पण्डित राजेन्द्रकुमारजी, जबलपुर; पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां; डॉ. राकेश शास्त्री, नागपुर; डॉ. योगेशचन्द जैन, अलीगंज; पण्डित अरहन्त झांझरी, उज्जैन; पण्डित नगेश जैन, पिड़ावा; पण्डित मनोज जैन, जबलपुर एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि का लाभ प्राप्त होगा।

सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-19, अङ्क-7 (वी.नि.सं. 2545; वि.सं. 2075) जुलाई 2019

वीरशासन जयन्ती पर विशेष...

दिव्यध्वनि वीरा...

दिव्यध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन,
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।टेक।।
आतम स्वभावं परभाव भिन्नम्
आपूर्णमाद्यंत-विमुक्तमेकम्।।

मेरे प्रभु विपुलाचल पर आये, वैशाखी दशमी को घातिया खिपाये;
क्षण में लोकालोक लखाये, किन्तु न प्रभु उपदेश सुनाये।
वाणी की काललब्धि आई नहीं उस दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।1।।

इंद्र अवधिज्ञान उपयोग लगाये, समवसरण में गणधर न पाये;
इन्द्रभूति गौतम में योग्यता लखाये, वीर प्रभु के दर्शन को आये।
काललब्धि लेकर के आई आज गौतम;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।2।।

मेरे प्रभु ॐकर ध्वनि को खिराये, गौतम द्वादश अंग रचाये;
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् समझाये, तन चेतन भिन्न-भिन्न बताये।
भेद-विज्ञान सुहायो आज शुभ दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।3।।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं, स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्;
विकल्प जाल च्युत शांतचित्तास्त एव साक्षातमृतं पिबंति।
स्वानुभूति की कला सिखाई आज शुभदिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।4।।

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमान् भीमजी भगवानजी शाह
हस्ते **श्री विजेन वी. शाह,**
फ्लैट नं. - 9, मैपलेवुड कोर्ट,
31-इस्टवरी एवेन्यु,
नार्थवुड मिडिलसेक्स
- एच.ए. 63 एल.एल.
(यू.के.)

क्या - कहाँ

वीरशासन जयन्ती पर विशेष	**5**
वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता	**11**
प्रथम प्रवचन	**16**
निश्चय सम्यग्दर्शन का मार्ग	**22**
संसारतत्त्व	**25**
आचार्यदेव परिचय शृंखला	
भगवान श्री एलाचार्य	**27**
श्री वीरसेनस्वामी	**28**
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला	**31**
समाचार-सार	**33**

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

वीरशासन जयन्ती पर विशेष

देशना-अवरोध और इंद्र की चिंता

तीर्थंक महावीर को दिव्यज्ञान की प्राप्ति वैशाख-शुक्ला दशमी के दिन अपराह्न काल में हो चुकी थी। आषाढ़ का मास व्यतीत होने जा रहा था, पर अभी तक भगवान महावीर की देशना आरंभ नहीं हुई थी। विद्वज्जन, देवगण एवं अन्य विचारशील व्यक्ति देशना के अवरोध के संबंध में विचार कर रहे थे। वे चिंतित थे कि तीर्थंकर महावीर ने अपने तपस्या-काल में मौन रहकर साधना की, उन्होंने कोई देशना नहीं दी। उनके संपर्क से दृष्टिविष जैसे सर्प और शूलपाणि जैसे यक्ष अवश्य उपकृत हुए थे। पूर्व तीर्थंकरों के समान सर्वभूत-हितार्थ महावीर की दिव्यध्वनि का लाभ हमें अवश्य होना चाहिए। पर यह क्या ? दिन गिनते-गिनते पैंसठ दिन बीत गए और महावीर की दिव्यवाणी प्रकट नहीं हुई। श्रोताओं ने मन को समझाया कि अभी काललब्धि नहीं आयी है। यही कारण है कि प्रभु की देशना में विलंब है।

इन दिनों में सभा-मंडप में कितने ही लोग आये, कुछ आकर लौट गए और कुछ भव्यप्राणी दिव्यध्वनि की प्रतीक्षा करते हुए उपस्थित रहे।

दिन-पर-दिन और रात-पर-रात व्यतीत होती गयी; पर तीर्थंकर की वाणी मुखरित न हुई। उपस्थित जनसमुदाय निराश होने लगा और वाणी के अवरुद्ध के कारण की जिज्ञासा करने लगा। सभी लोग स्तब्ध थे, असमंजस में थे, पर समाधान किसी के पास न था। सब जानते थे कि तीर्थंकर महावीर मूककेवली नहीं। उनका उपदेश अवश्य होगा। पर कब होगा ? और अब तक क्यों अवरुद्ध है ? इसकी जानकारी किसी को नहीं थी।

पैंसठ दिनों तक समवसरण भी एक स्थान पर नहीं रह सका और तीर्थंकर महावीर विहार करते हुए राजगृह के निकट विपुलाचल पर आये। यहाँ भी कुबेर ने पूर्ववत् सभा-मंडप—समवसरण की रचना की। असंख्य श्रोता इस सभा में भी उपस्थित थे, पर गतिरोध ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। तीर्थंकर महावीर की वाणी के प्रकट न होने से सौधर्म इंद्र को चिंता उत्पन्न हुई और उसने ज्ञान-गंगा के

अवरुद्ध रहने के कारणों की जानकारी चाही। सौधर्म इंद्र ने अवधिज्ञान से ज्ञात किया कि सम्यक् और यथार्थ ज्ञानी गणधर के अभाव में ज्ञान-गंगा रुकी हुई है। उसे अवतरित करने के लिए किसी भगीरथ की आवश्यकता है। जब तक सच्चा जिज्ञासु और श्रुतज्ञान का धारक व्यक्ति उपस्थित न होगा, तब तक तीर्थंकर की दिव्यध्वनि संभव नहीं है। समवसरण में इस समय - कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो तीर्थंकर महावीर की वाणी को सुने, समझे और ठीक-ठीक उसकी व्याख्या कर सके। जब तक ज्ञान की गूढ़ता का ज्ञाता यथास्थिति का संवहन करनेवाला व्यक्ति इस सभा में उपस्थित नहीं होगा, तब तक तीर्थंकर की वाणी मुखरित नहीं हो सकेगी। अतएव मुझे गणधर की खोज करनी है।

जिस प्रकार तीर्थंकर तीर्थ का निर्माता होता है और श्रुतरूप ज्ञान-परंपरा का पुरस्कर्ता होता है, उसी प्रकार-गणधर तीर्थ-व्यवस्थापक, नियोजक और तीर्थंकरों की अर्थरूप वाणी का व्याख्याता होता है। प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में गणधर एक अत्यावश्यक उत्तरदायित्वपूर्ण और महान प्रभावशाली व्यक्तित्व होता है। वह इनके पादमूल में दीक्षित होता है।

वस्तुत: साधना के क्षेत्र में व्यक्ति स्वयं अपना विकास कर सकता है, पर साधना को सिद्ध करने उसके प्रकाश को जन-जन के जीवन में प्रसारित करने के हेतु महान् व्यक्तित्व-संपन्न व्यक्ति भी समाज में जब प्रविष्ट होता है अथवा संघ एवं समाज की स्थापना करता है, तब उसे इसके लिए सहयोगी के रूप में तेजस्वी व्यक्तित्व की अपेक्षा होती ह। यत: सहयोग के बिना कार्य को साकार रूप नहीं दिया जा सकता है। ज्ञान की अभिव्यक्ति करने के लिए क्रिया का सहयोग आवश्यक है। व्यक्ति का आचार ही व्यक्ति के विचार को अभिव्यक्ति दे सकता है। आचार के बिना विचार साकाररूप ग्रहण नहीं कर सकता है। इसी प्रकार श्रद्धालु एवं कर्मनिष्ठ व्यक्ति ही महान तेजस्वी व्यक्तित्व की तेजस्विता को जन-जन के समक्ष प्रकट कर सकता है।

प्रत्येक तीर्थंकर के लिए गणधर की नितांत आवश्यकता है। तीर्थंकर की ज्ञान-साधना गणधर के द्वारा ग्रहण करनेवाला गणधर परम आवश्यक है।

इंद्रभूति गौतम का जन्म मगध-जनपद के गोब्बर ग्राम में हुआ था। इनकी माता का नाम पृथ्वी और पिता का नाम वसुभूति था। इनका गोत्र गौतम था।

गौतम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—'गोभिस्तमो ध्वस्तं यस्य'—बुद्धि के द्वारा जिसका अंधकार नष्ट हो गया है अथवा जिसने अंधकार नष्ट किया है। यों तो 'गौतम' शब्द कुल एवं वंश का वाचक है। ऋग्वेद में भी गौतम नाम से अनेक सूक्त मिलते हैं। इस नामधारी अनेक व्यक्ति हो चुके हैं। इंद्रभूति गौतम का व्यक्तित्व विराट एवं प्रभावशाली था। दूर-दूर तक उनकी विद्वत्ता की धाक विद्यमान थी। 500 छात्र उनके पास अध्ययन करते थे। इनके व्यापक प्रभाव के कारण सोमिल आर्य ने इस महायज्ञ का धार्मिक नेतृत्व इनके हाथ में सौंपा था। मगध-जनपद के सहस्त्रों नागरिक दूर-दूर से इस यज्ञ के दर्शन करने आये थे।

राजगृह के निकट विपुलाचल पर निर्मित समवसरण में तीर्थंकर महावीर की देशना सुनने के लिए असंख्य देव विमानों द्वारा पुष्पों की वर्षा करते हुए जा रहे थे। आकाशमार्ग जय-जयकार की ध्वनि से गूँजित था। जिस प्रकार छोटी-छोटी सरिताएँ बृहत् समुद्र में सम्मिलित होती हैं, उसी प्रकार नर-नारियों के विभिन्न वर्ग इस सभा में सम्मिलित होने के लिए आकुलित थे।

यज्ञ-मंडप में स्थित विद्वानों ने आकाशमार्ग से आते हुए देवगणों को देखा, तो वे रोमांचित हो कहने लगे—'यज्ञ-महात्म्य से प्रभावित होकर आहुति ग्रहण करने के हेतु देवगण आ रहे हैं।' लक्ष-लक्ष मानवों की आँखें आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रही थी, पर जब देवविमान यज्ञ-मंडप के ऊपर से होकर सीधे आगे निकल गए, तो यज्ञ-समर्थकों के बीच बड़ी निराशा उत्पन्न हुई। सबकी आँखें नीचे झुक गईं, मुख मलिन हो गए और आश्चर्य के साथ सोचने लगे—'अरे! देवगण भी किसी की माया में फँस गए हैं या भ्रम में पड़ गये हैं? यज्ञ-मंडप छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?'

इंद्रभूति ने देवविमानों को प्रभावित करने की दृष्टि से वेद-मंत्रों का पाठकर तुमुल ध्वनि की, पर उनके अहंकार पर चोट करते हुए देवविमान सीधे निकल गए।

इंद्रभूति को यह जानकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि ये सभी देवविमान तीर्थंकर महावीर की समवसरण-सभा में जा रहे हैं। इंद्रभूति का मन अहंकार पर चोट लगने से उदास हो गया। उनका धर्मोन्माद मचल उठा। इसी समय सौधर्म-इंद्र वटुक का रूप बनाये हुए इंद्रभूति के समक्ष पहुँचा और कहने लगा—'गुरुवर! आपकी विद्वत्ता की यशोगाथा देशभर में व्याप्त है। वेद,

उपनिषद् का ज्ञान आपकी चेतना के कण-कण में छाया हुआ है। आप दर्शन, न्याय, तर्क, ज्योतिष और आयुर्वेद के मर्मज्ञ विद्वान हैं। मुझे एक गाथा का अर्थ समझ में नहीं आ रहा है। अत: उसका अर्थ ज्ञात करने के लिए मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यदि आप आदेश दें, तो मैं उस गाथा को आपके समक्ष प्रस्तुत करूँ।

इंद्रभूति गौतम ब्राह्मण वटुकरूपधारी इंद्र के विनीत भाव से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अनुभव किया कि आगंतुक वृद्ध में ज्ञान की पिपासा है। वह नम्र और अनुशासित भी है। अत: इसकी जिज्ञासा-पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है।

इंद्र ने नम्रतापूर्वक कहा—

पंचेव अत्थिकाया छज्जीव-णिकाया महव्वया पंच।
अट्ठयपवयण-मादा सहेउओ बंध-मोक्खो य॥

षट्खंडागम, धवला, पुस्तक 9, पृष्ठ 129 में उद्धृत

इंद्रभूति—'मैं इस गाथा का अर्थ तभी बतलाऊँगा, जब तुम इसका अर्थ ज्ञात हो जाने पर मेरे शिष्य बनने की शर्त स्वीकार करो।'

इंद्रभूति बहुत समय तक गाथा का अर्थ सोचता रहा। पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। अतएव वह इंद्र से कहने लगा—'तुमने यह गाथा कहाँ से सीखी है? किस ग्रंथ में यह गाथा आयी है?'

ब्राह्मणवेशधारी इंद्र—'मैंने यह अपने गुरु तीर्थंकर महावीर से सीखी है। पर वे कई दिनों से मौनावलम्बन लिये हुए हैं। इसी कारण इस गाथा का अर्थ मैं उनसे नहीं जान पाया। आपका यश वर्षों से सुनता चला आ रहा हूँ और आपकी प्रखर प्रतिभा का मैं प्रशंसक हूँ। अतएव इस गाथा का अर्थ ज्ञात करने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।'

इंद्रभूति समझ न सके कि पंचास्तिकाय क्या हैं? छह जीवनिकाय कौन से हैं? आठ प्रवचनमात्रिकाएँ क्या वस्तु हैं? इंद्रभूति को जीव के अस्तित्व के संबंध में स्वयं शंका थी। अत: वे और भी असमंजस में पड़कर कहने लगे—'चलो, तुम्हारे गुरु के समक्ष ही इस गाथा का अर्थ बतलाऊँगा। मैं अपनी विद्वत्ता का प्रभाव तुम्हारे गुरु पर ही प्रकट करना चाहता हूँ।'

इंद्रभूति गौतम की उक्त बात सुनकर इंद्र बहुत प्रसन्न हुआ और मन में सोचने लगा—'मेरा कार्य अब संपन्न हो गया। तीर्थंकर महावीर के समवसरण में पहुँचते ही इनका अहंकार विगलित हो जाएगा और शंकाओं का समाधान स्वयं हो जाएगा।'

मानस्तम्भदर्शन : मानगलन और रत्नत्रय का उपहार

इंद्रभूति गौतम ने शास्त्रार्थ करने की आकांक्षा से तीर्थंकर महावीर के समवसरण में प्रवेश किया। मानस्तम्भ के दर्शनमात्र से ही उनके मन का सारा कालुष्य धुल गया। स्तम्भ देखकर इन्द्रभूति स्तब्ध रह गया और ज्ञान का समस्त अहंकार पिघल गया। इंद्रभूति गौतम के लिए मानस्तम्भ प्रकाश-स्तम्भ बन गया। उनके हृदय का तिमिर छिन्न हो गया और उन्हें क्षायोपशमिक ज्ञान की सीमा ज्ञात हो गई। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि मेरा ज्ञान कितना बौना है। मैं तो तीर्थंकर महावीर के ज्ञान की एक किरण भी छूने में असमर्थ हूँ। न मालूम क्यों मुझे अपने ज्ञान का अहंकार था। आज मेरा अभिमानी मन विनम्रता से भर गया है, द्रवीभूत हो गया है।

इंद्रभूति गौतम गद्‌गद होकर गंधकुटी में विराजमान तीर्थंकर महावीर की मंगल-मुद्रा का दर्शनकर हर्ष विभोर हो उठा। प्रतिभा के साथ उसकी श्रद्धा के कपाट भी खुल गए। मिथ्यात्वरूपी ओस-कण महावीर के केवलज्ञानरूपी सूर्य प्रभा से सूखने लगे। उसकी अंतरात्मा निर्मल नीर की तरह स्वच्छ हो गई। सम्यग्दर्शन का आविर्भाव हो गया और ज्ञान का मद चूर हो गया।

श्रद्धातिरेक के कारण उसके परिणामों में अतिशय कोमलता उत्पन्न हो गई। आया था शास्त्रार्थ करने, पर उसके शास्त्र के सभी शस्त्र कुंठित हो गए। वीतरागता के समक्ष उसके मन का कालुष्य धुल गया। दंभ और मिथ्या का लेशमात्र भी न रहा। मन की ग्रंथि खुल गई और वह तीर्थंकर महावीर का सच्च्वा उपासक हो गया। वह तन और मन से निर्ग्रंथ बनने का संकल्प करने लगा।

इंद्रभूति ने दिगम्बरी दिक्षा धारण कर ली। उसे मन:पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। इंद्रभूति गौतम की मिथ्यात्व श्रद्धा का ताला टूटते ही जय-जयकार की ध्वनि होने लगी।

यह पावन दिन आषाढ़ी पूर्णिमा का था, इसी दिन गौतम ने दीक्षा धारण की

थी। इसी कारण यह दिन 'गुरुपूर्णिमा' के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। अगले दिन श्रावण कृष्ण-प्रतिपदा के ब्रह्ममुहूर्त में भगवान महावीर की दिव्यध्वनि आरंभ हुई और इसीलिए धर्मतीर्थ की उत्पत्ति भी इसी दिन हुई—

वासस्स पढममासे सावणमासम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजी-णक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स॥

(तिलोयपण्णत्ती, १।६९)

वीरसेनाचार्य ने केवलज्ञानोत्पत्ति के 66 दिन तक देशना प्रकट न होने के कारण की मीमांसा की है। लिखा है—

केवलणाणे समुप्पण्णे वि दिव्वज्झुणीए किमट्ठं तत्थापउत्ती? गणिंदाभावादो। सोहम्मिंदेण तक्खणे चेव गणिंदो किण्ण ढोइदो? ण, काललद्धीए विणा असेहज्जस्स, देविंदस्स तड्ढोयणसत्तीए अभावादो। सगपादमूलम्मि पडिवण्णमहव्वयं मोत्तूण अण्णमुद्दिसिय दिव्वज्झुणी किण्ण पयट्टे? साहावियादो। ण च सहाओ परपज्जणिओगोरुहो, अव्ववत्थापत्तीदो।

कसाय पाहुड, जयधवला, पुस्तक 1, पृष्ठ 76

आशय यह है कि सौधर्म इंद्र भी काललब्धि के अभाव में तत्काल गणधर की तलाश नहीं कर सका। काललब्धि के संबंध में प्रश्न नहीं किया जा सकता, यत: यह स्वभाव है और स्वभाव में तर्क का प्रवेश नहीं होता।

इंद्रभूति गौतम ने पचास वर्ष की अवस्था में दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष-भवन की सीढ़ियों पर पदार्पण किया। ये तत्त्वज्ञानी, विशिष्ट साधक और तपस्वी थे और थे विरल अध्यात्मयोगी, सिद्धिसंपन्न, साधक और विश्व-कल्याण की उग्र भावना से युक्त परिव्राजक। उनमें विनय, सरलता, मृदुता और विचारशीलता पूर्णत: विद्यमान थी। इनका जीवन पुष्पतुल्य ही नहीं, किंतु पुष्पों का रंग-विरंगा गुलदस्ता था, जिसमें विविध प्रकार के सौरभ के साथ सुरम्य सुकुमारता भी निहित थी।

गणधरों में इंद्रभूति का प्रधान स्थान था। महावीर के समवसरण में ग्यारह विद्वान गणधर नाम से विख्यात थे। इन सभी ने महावीर के दिव्यज्ञान और तेज से प्रभावित होकर दिगम्बर-दीक्षा ग्रहण की थी।

साभार : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा

श्री प्रवचनसार, गाथा 99 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी के प्रवचनों का सार

वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता
— विश्व के ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव —

गतांक से आगे

दो बातें हुई हैं:—(1) प्रथम तो, क्षेत्र के दृष्टान्त से द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाह की एक समग्रवृत्ति बतलायी, और इस प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश, सो परिणाम हैं —ऐसा बतलाया। इस प्रकार द्रव्य को सत् सिद्ध किया। 'उसमें, अखण्ड अस्तित्व की अपेक्षा से एकत्व और परिणामों की अपेक्षा से अनेकत्व'—इस प्रकार सत् में एकत्व-अनेकत्व भी सिद्ध किया।

(2) उसके पश्चात् परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

इस प्रकार दो बातें सिद्ध कीं; अब उनका विस्तार करके उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं।

'जिस प्रकार वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप में उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वस्तुपने द्वारा अनुत्पन्न—अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं।'

इसमें प्रदेशों की बात दृष्टान्तरूप और परिणामों की बात सिद्धान्तरूप है।

प्रश्न—यह कौन-सा विषय चल रहा है ?

उत्तर—यह वस्तुस्वभाव की बात हो रही है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणाम— वह पदार्थों का स्वभाव है, और उस स्वभाव में सदैव स्थित द्रव्य सत् है—यह बात यहाँ सिद्ध करना है। उसमें प्रथम इतनी बात तो सिद्ध कर चुके हैं कि द्रव्य की वृत्ति अनादि-अनन्त अखण्डरूप से एक होने पर भी, उसके प्रवाहक्रम का अंश, सो परिणाम है। वे-वे परिणाम एक-दूसरे में नहीं वर्तते किन्तु उनका एक-दूसरे में अभाव है। उसमें से अब विस्तार करके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं। उसमें भी प्रथम क्षेत्र का दृष्टान्त देते हैं।

सम्पूर्ण द्रव्य के एक क्षेत्र को लें तो उसके प्रदेश उत्पत्ति-विनाशरहित हैं और उन प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक होने से, वे अपने-अपने स्वक्षेत्र में अपने सत् और पूर्व प्रदेशरूप से असत् हैं—अर्थात् वे प्रदेश अपने से उत्पादरूप हैं और पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से व्ययरूप हैं; इस प्रकार समस्त प्रदेश उत्पाद-व्ययरूप हैं और सर्व प्रदेशों का विस्तार साथ में ले लेने से द्रव्य के प्रदेश ध्रौव्यरूप हैं। इस प्रकार समस्त प्रदेश एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। (यहाँ प्रदेशों के जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे हैं, वे क्षेत्र अपेक्षा से समझना।) इस उदाहरण के अनुसार समय-समय के परिणामों में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। अनादि-अनन्त एक प्रवाह की अपेक्षा से परिणाम, उत्पत्ति-विनाशरहित ध्रुव हैं और वे परिणाम अपने-अपने स्वकाल में उत्पादरूप हैं तथा पूर्व परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं। इस प्रकार समस्त परिणाम, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप हैं और ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम, वह वस्तु का स्वभाव है।

यहाँ प्रथम समुच्चय क्षेत्र की और समुच्चय परिणामों की इकट्ठी बात लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं। एक परिणाम पृथक् करके उसकी बात फिर करेंगे। यह बात अकेले आत्मा की नहीं किन्तु समस्त द्रव्यों के स्वभाव की है, किन्तु यहाँ आत्मा की मुख्यता से बात की जाती है।

जिस प्रकार आत्मा के असंख्य प्रदेशों में एक समय में क्षेत्र अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू होता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रवाहक्रम में वर्तनेवाले समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न हैं, पूर्व-रूप से विनष्ट हैं और अखण्ड धारावाही प्रवाहरूप से वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं, इसलिए वे परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं।

प्रदेशों के उदाहरण में क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है और सिद्धान्त में परिणाम-अपेक्षा से (प्रवाह-अपेक्षा से, काल-अपेक्षा से) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

देखो तो! क्रमबद्ध अपने अवसर में समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहकर पूर्ण त्रैकालिक द्रव्य को ज्ञेयरूप से सामने रख दिया है। सर्वज्ञ की और ज्ञानस्वभाव की प्रतीति के बिना किसी प्रकार यह बात भीतर नहीं जम सकती। इसकी प्रतीति में सम्यग्दर्शन है और चौंसठपुटी पीपर घुंट रही हो, इस प्रकार

इसके घोंटने में अकेली वीतरागता ही घुंटती है। अहो! अद्भुत बात रखी है।

द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न हैं, पूर्व-रूप से विनष्ट हैं और एक अखण्डप्रवाह की अपेक्षा से वे उत्पत्ति-विनाश रहित ध्रौव्य हैं।

यहाँ परिणामों का स्व-अवसर कहकर आचार्यदेव ने अद्भुत बात की है। जितने एक द्रव्य के परिणाम, उतने ही तीन काल के समय; और जितने तीन काल के समय, उतने ही एक द्रव्य के परिणाम। बस! इतना निश्चित करे तो अपने ज्ञायकपने की प्रतीति हो जाये। द्रव्य के प्रत्येक परिणाम का अपना-अपना अवसर भिन्न है। तीन काल के परिणाम एकसाथ ज्ञेय हैं और यहाँ आत्मा उनका ज्ञाता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायकपने में बीच में राग नहीं रहा, अकेली वीतरागता ही आयी। प्रथम ऐसी श्रद्धा करने से वीतरागी श्रद्धा होती और पश्चात् ज्ञानस्वभाव में स्थिरता होने से वीतरागी चारित्र होता है।

अहो! द्रव्य के परिणामों का स्व-अवसर कहो अथवा क्रमबद्ध-परिणाम कहो, उसकी प्रतीति करने से परिणामी-ऐसे त्रिकाली द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। परिणामों के स्व-अवसर की यह बात स्वीकार करने से तो—निमित्त आये तो परिणाम होता है, या निमित्त के कारण यहाँ परिणाम में फेरफार होता है, कर्म के उदय से विकार होता है, या व्यवहार करते-करते परमार्थ प्रगट होता है, अथवा तो पर्याय के आधार से पर्याय होती है—ऐसी कोई बात बनी ही नहीं रहती। समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में द्रव्य में से प्रगट होते हैं। जहाँ द्रव्य का प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में 'सत्' है, वहाँ निमित्त के सन्मुख देखना ही कहाँ रहा?—और 'मैं पर में फेरफार करूँ या पर से मुझमें फेरफार हो'—यह बात भी कहाँ रही?—मात्र ज्ञाता और ज्ञेयपना ही रहता है, यही मोक्षमार्ग है, यही सम्यक् पुरुषार्थ है।

जो तीन काल के परिणाम हैं, वे द्रव्य के प्रवाहरूपी साँकल की कड़ियाँ हैं। जिस प्रकार साँकल की कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती; जैसी हैं, वैसी ही रहती हैं; उसी प्रकार द्रव्य के अनादि-अनन्त परिणाम अपने अवसर से आगे-पीछे नहीं होते, प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में सत् है। इसमें तीन काल के परिणामों की एक अखण्ड साँकल लेकर उत्पाद-व्यय -ध्रौव्य की बात है। द्रव्य

अपने परिणामस्वभाव में स्थित है। इस समय परिणाम का स्वभाव क्या है, वह बात चल रही है। प्रथम परिणामों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव सिद्ध करते हैं और पश्चात् द्रव्य उस परिणामस्वभाव में स्थित होने से वह द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है—ऐसा अन्त में सिद्ध करेंगे। ज्ञाता, वस्तु के ऐसे स्वभाव को जाने और ज्ञेयों में फेरफार करना न माने, वह सम्यक्त्व है और पदार्थों के स्वभाव का ज्ञाता रहे, उसमें वीतरागता है।

इस प्रवचनसार में पहले तो ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन में आत्मा का ज्ञानस्वभाव निश्चित किया है और पश्चात् दूसरे अधिकार में ज्ञेयतत्त्वों का वर्णन किया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान ही है और जीव-अजीव में अपने-अपने अवसर में होनेवाले तीन काल के परिणाम ज्ञेय हैं—ऐसी प्रतीति करने से कहीं फेरफार या आगे-पीछे करने की बुद्धि नहीं रही; इसलिए ज्ञान स्व में स्थिर हुआ। यही वीतरागता और केवलज्ञान का कारण है।

पदार्थों का जैसा सत्स्वभाव हो, वैसा माने तो सत्मान्यता कहलाये, किन्तु पदार्थों के सत्स्वभाव से अन्य प्रकार माने तो वह मान्यता मिथ्या है। यह 'सत्' की श्रद्धा कराते हैं। 'सत्' द्रव्य का लक्षण है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। द्रव्य के ऐसे सत्स्वभाव की प्रतीति करना, सो सम्यग्दर्शन है, यही सच्चा 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' है। इस समय बात तो परिणामों की चल रही है, किन्तु परिणाम के निर्णय में परिणामी द्रव्य का निर्णय भी आ जाता है। परिणाम तो क्षणिक हैं, किन्तु वह परिणाम किसके! कहते हैं कि-त्रिकाली द्रव्य के। परिणाम अधर से नहीं होते किन्तु परिणामी के परिणाम हैं; इसलिए परिणाम का निर्णय करने से परिणामी द्रव्य का ही निर्णय होता है और अकेले परिणाम के ऊपर से रुचि हटकर त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की ओर रुचि और ज्ञान झुकता है—यही सम्यग्दर्शन और वीतरागता का मूल है।

यह 99 वीं गाथा अत्युत्तम है; इसमें वस्तुस्थिति के स्वरूप का अलौकिक रीति से वर्णन किया है। समस्त द्रव्य 'सत्' है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित परिणाम उसका स्वभाव है और ऐसे स्वभाव में सदैव प्रवर्तमान होने से द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है; —ऐसा इस गाथा में सिद्ध करना है।

(1) टीका में, प्रथम तो द्रव्य में समग्रपने द्वारा अनादि-अनन्त प्रवाह की

एकता, और प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश, सो परिणाम—ऐसा बतलाया।

(2) फिर प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

(3) पश्चात् समुच्चयरूप से सम्पूर्ण द्रव्य के त्रिकाली परिणामों को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया। (उसके दृष्टान्त में, द्रव्य के समस्त प्रदेशों को क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया।)

(4) तत्पश्चात् एक ही परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकपना बतलाया। (उसके दृष्टान्त में प्रत्येक प्रदेश में क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलाये।)

(5) इस प्रकार परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने के पश्चात् अन्त में—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम के प्रवाह में निरन्तर वर्त रहा है, इसलिए द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित होने से सत् है—इस प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं।

ऊपर जो पाँच बोल कहे हैं, उनमें से इस समय यह तीसरे बोल का विवेचन हो रहा है। अपने-अपने अवसर में त्रैकालिक समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एक ही साथ बात करके यहाँ अकेला ज्ञायकभाव ही बतलाया है। यहाँ सम्पूर्ण ज्ञायकभाव और सामने सम्पूर्ण ज्ञेय एकसाथ ले लिया है।

यहाँ परिणामों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण लिया है। कोई ऐसा कहे कि—दूसरा कोई सरल उदाहरण न देकर आचार्यदेव ने प्रदेशों का ऐसा सूक्ष्म उदाहरण क्यों दिया?—तो कहते हैं कि—भाई! तू शान्त हो! आचार्यदेव ने प्रदेशों का उदाहरण योग्य ही दिया है। क्योंकि द्रव्य का सारा क्षेत्र एकसाथ अक्रम से फैला पड़ा है और परिणामों की व्यक्तता तो क्रमशः होती है; इसलिए प्रदेशों का उदाहरण शीघ्र ही समझ में आ सकता है, और परिणामों की बात उससे सूक्ष्म है। यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म एवं गम्भीर बात समझाना है; इसलिए उदाहरण भी प्रदेशों का सूक्ष्म ही लेना पड़ा है। यदि बाह्य-स्थूल उदाहरण दें तो सिद्धान्त की जो सूक्ष्मता और गम्भीरता है, वह ख्याल में नहीं आयेगी; इसलिए ऐसे सूक्ष्म उदाहरण की ही यहाँ आवश्यकता है। *क्रमशः*

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक तीन

श्री समयसार नाटक पर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का धारावाही प्रवचन

प्रथम प्रवचन

सम्यग्दृष्टि की स्तुति-

भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट,
सीतल चित्त भयौ जिम चंदन।
केलि करैं सिव मारगमैं,
जग माहिं जिनेसुरके लघु नंदन।
सत्यसरुप सदा जिन्हकै,
प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात-निकंदन।
सांतदसा तिन्हकी पहिचानि,
करै कर जोरि बनारसि वंदन।।6।।

अर्थ:- जिनके हृदय में निज-परका विवेक प्रगट हुआ है, जिनका चित्त चन्दन के समान शीतल हैं अर्थात् कषायों का आताप नहीं है, जो निज-पर विवेक होने से मोक्षमार्ग में मौज करते हैं, जो संसार में अरहंतदेव के लघु पुत्र हैं अर्थात् थोड़े ही काल में अरहंत पद प्राप्त करनेवाले हैं, जिन्हें मिथ्यादर्शन को नष्ट करनेवाला निर्मल सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ हैं; उन सम्यग्दृष्टि जीवों की आनंदमय अवस्था का निश्चय करके पण्डित बनारसीदासजी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं ।।6 ।।

काव्य - 6 पर प्रवचन

अब सम्यग्दृष्टि का वर्णन करके उसकी वंदना और स्तुति करते हैं। धर्म की प्रथम सीढ़ीवाले, गृहस्थदशा में स्थित सम्यग्दृष्टि कैसे होते हैं, उसका वर्णन करते हैं-

गृहस्थाश्रम में रहनेवाले धर्मी भी कैसे होते हैं, उसका वर्णन करके मंगलाचरण में स्तुति और वंदन करते हैं। जिन्हें निज-पर का विवेक प्रकट हो गया हैं -ऐसे धर्मी गृहस्थाश्रम में रहते हैं, अरे! चक्रवर्ती हों, उन्हें छियानवें हजार रानियाँ और छियानवें करोड़ सैनिक हों, तथापि ये मैं नहीं -ऐसा विवेक उन्हें

वर्तता है। मैं तो एक सच्चिदानन्द आत्मा हूँ, अन्य विकल्पादि से लेकर राजपाट, स्त्री-पुत्रादि कुछ भी मैं नहीं हूँ; ये मुझमें नहीं और मैं इनमें नही हूँ- ऐसी दशा गृहस्थदशा में भी सम्यग्दृष्टि की होती है।

पहला शब्द ही 'भेद-विज्ञान' प्रयोग में लिया है। जिन्हें स्व-पर का विवेक प्रकट हुआ है, निज स्वरूप भगवान चैतन्य, आनन्द ज्योति और पुण्य-पाप के विकल्परूप विकार-जहर तथा स्त्री-पुत्रादिक पर-जड़-इनसे भिन्नता जिसने जानी है, उसे ही समकिती-धर्म के प्रारम्भवाला ज्ञानी कहा जाता है।

अनादि से तो राग और शरीर को अपना माना था। अपने नहीं होने पर भी अपने माने थे; किन्तु धर्मी ने अब भेदविज्ञान द्वारा उनको भिन्न जाना है कि यह शरीर, कर्म इत्यादि परवस्तु मेरे अस्तित्व में नहीं और मैं उनके अस्तित्व में नहीं हूँ। चक्रवर्ती के छियानवें हजार रानियाँ होती हैं; वे भी कैसी ?एक-एक पद्मिनी जैसी सुंदर, उनमें भी एक पटरानी की सेवा तो एक हजार देव करते हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि जानता है कि यह वस्तु हमारी नहीं है। ये हमारी नहीं और हम इनके नहीं। ये वस्तु हमारे में से आयी नहीं, ये तो स्वयं अपने कारण से आयी हुई वस्तुयें हैं। मुझे इनके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट- अर्थात् जिनके हृदय में - अन्तरज्ञान में, जैसे करौत मारते ही लकड़ी के दो भाग हो जाते हैं; वैसे भेदज्ञानरूपी करौत द्वारा स्व और पर ऐसे दो भाग भिन्न हो गये हैं। एक ओर स्वयं भगवान आत्मा पूर्णानंद का नाथ और दूसरी ओर पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर समस्त परवस्तुयें -इनका भेदज्ञान हो गया है। जो मेरी वस्तु है वह भिन्न नहीं हो सकती है और जो भिन्न हो जाये वह मेरी वस्तु नहीं। इसप्रकार जिसे स्व-पर की भिन्नता का भान हो गया है वह धर्मी है।

जिसका मन चंदन के समान शीतल हो गया है; क्योंकि मन में कषायों का आताप नहीं रहा है। पुण्य-पाप की वृत्तियाँ उठती हैं, वे कषाय का आताप हैं। उनसे धर्मी को भेदज्ञान हो गया है।

अरे ! जीवो को सत्य तत्त्व की खबर नहीं और धर्म के नाम पर कहीं न कहीं रुके रहते हैं। देह की स्थिति तो घटती जाती है। प्रतिसमय देह की स्थिति कम होती जा रही है और यह मानता है कि मैं आगे बढ़ रहा हूँ..धूल में ही आगे नहीं

बढ़ा। भाई! पाप में आगे बढ़ रहा है, किन्तु तुझे इसकी खबर नहीं है। जो अपना नहीं, उसे अपना मानता है और जो अपना है उसे पहिचानता नहीं है।

क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाय के चार भेद हैं। इसमें भी तीव्र और मंद आदि के चार भेद हैं। उनमें सबसे कठोर अनंतानुबंधी कषाय है, जिसके कारण जीव संसार में परिभ्रमण करता है। सम्यग्दृष्टि ने उसका अभाव किया है; अतः शांत-चैतन्य में से शीतलता प्रकट हुई है - इसकारण चंदन के समान शीतल हो गया है। यहाँ चंदन की तो उपमा दी है; वस्तुतः तो चंदन की शीतलता और आत्मा की शीतलता का कोई मेल नहीं है; क्योंकि जाति ही दोनों की भिन्न है, किन्तु लोक में जिसकी शीतलता उत्कृष्ट मानी जाती है उसकी उपमा दी जाती है।

'कैलि करे शिव मारग में' चतुर्थ गुणस्थानवर्ती धर्मी शिव मारग में कैलि करते हैं -ऐसा कहा है; किन्तु लोगों को सम्यक्त्व की कीमत की खबर नहीं है। सारा हिन्दुस्तान बाह्य क्रिया में भरमाता है, धर्म के नाम पर ठगाया गया है। बाह्य त्याग में ही धर्म मान लिया है और सच्चे धर्म की खबर नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि निज-पर का विवेक होने से धर्मी तो मोक्षमार्ग में मौज करता है। धर्मी को रागादि आते हैं किन्तु उनका प्रेम नहीं है। धर्मी को रागादि आते है यह कहना भी व्यवहार है। वस्तुतः धर्मी को तो ज्ञान आता है। धर्मी खाना-पीना-सोना इत्यादि क्रियायें करते हुए दिखने पर भी मुक्तिमार्ग में मौज करते हैं, कैली करते हैं। लोगों को ऐसा लगता है कि ये तो हमारे से भी अच्छा खाते हैं, पीते हैं, अच्छी तरह रहते हैं। भरत चक्रवर्ती बत्तीस ग्रास मात्र आहार लेते थे। उस आहार को छियानवे करोड़ सैनिक भी नहीं पचा सकते; साधारण मनुष्य खावे तो मर ही जाये- ऐसी उत्कृष्ट भस्मों का आहार होता है; किन्तु धर्मी उस आहार में सुख नहीं मानते। वे तो भेदज्ञान में ही सुख मानते हैं। चाण्डाल सम्यग्दृष्टि को भी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार में) देव कहा है। जैसे राख से आच्छादित अग्नि दिखायी नहीं देती तथापि वह अन्दर में विद्यमान ही है; वैसे ही चाण्डाल के शरीर के अन्दर शरीर से भिन्न चैतन्य ज्योति पड़ी ही है।

सम्यग्दृष्टि जगत में दिखता है, किन्तु वह जिनेश्वर का लघुनंदन है, भगवान का छोटा पुत्र है। उसे भगवान की सम्पत्ति मिलने में देर नहीं है। साधु, जो कि अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंदसहित जंगलवासी हैं, वे उत्कृष्ट अर्थात् बड़े पुत्र हैं; किन्तु सम्यग्दृष्टि भी छोटा पुत्र है, सर्वज्ञ का लघुनंदन है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती

सम्यग्दृष्टि को श्रावक के समान शान्ति और संयम नहीं होने पर भी उसे सर्वज्ञ का पुत्र कहा है, क्योंकि उसे भले ही केवलज्ञान प्रकट नहीं हुआ किन्तु केवलज्ञान प्रकट होने का साधन प्रकट हो गया है, अतः अल्पकाल में ही सर्वज्ञ का उत्तराधिकार ले लेगा। अर्थात् कुछ ही काल में अरहंतदशा प्रकट करने वाला है। जिनको ज्ञान और राग की भिन्नता का प्रारम्भ हो गया है, वे अल्पकाल में ही पूर्णरूप से भिन्न हो जायेंगे।

'सत्यस्वरूप' अर्थात् सम्यग्दर्शन। जिसे पुण्य-पाप के राग-विकल्प से रहित शुद्धआनंदकंद का सम्यक्-सत्यदर्शन हुआ है, जिसके ज्ञान में सदा सत्यस्वरूप का अनुभव और प्रतीति वर्तती है और जिसने मिथ्यात्व का नाश किया है; वस्तु स्वरूप ऐसा होगा या वैसा होगा ऐसा संदेह जिसे नहीं रहा ऐसी धर्मी जीव की शांत अर्थात् अकषाय शुद्वदशा जानकर, उसका निश्चय करके, पण्डित बनारसीदासजी हाथ जोड़कर वंदन करते हैं।

बनारसीदासजी स्वयं ज्ञानी होने के साथ ही कवि भी थे। उन्होंने प्रचलित सादी हिन्दी भाषा में कैसे काव्य बनाये हैं! जिन्हे समझने के लिए बहुत संस्कृत अथवा व्याकरण की आवश्यकता नहीं है। अत्यन्त सरल शब्दों में सुन्दर भाव भर दिये हैं।।6।।

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त,
साचे साचे बैन कहैं साचे जैनमती हैं।
काहूके विरुद्धि नाहि परजाय-बुद्धि नाहि,
आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं ।।
सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घट मैं प्रगट सदा,
अंतर की लच्छिसौं अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्त के उदास रहैं जगतसौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं ।।7।।

अर्थः- जिन्हें निज आत्मा का सच्चा ज्ञान है और मोक्ष पदार्थ से सच्चा प्रेम है, जो हृदय के सच्चे हैं और सत्य वचन बोलते हैं तथा सच्चे जैनी हैं, किसी से भी जिनका विरोध नहीं है, शरीर में जिनको अहंबुद्धि नहीं है, आत्मस्वरूप के खोजक हैं, न अणुव्रती हैं न महाव्रती हैं, जिन्हें सदैव अपने ही हृदय में आत्महित

की सिद्धि, आत्मशक्ति की रिद्धि और आत्मगुणों की बुद्धि प्रगट दिखती है, जो जिनराज के सेवक हैं, संसार से उदासीन रहते हैं, जो आत्मीय सुख से सदा आनन्दरूप रहते हैं; ऐसे गुणों के धारक सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं ।।7।।

काव्य - 7 पर प्रवचन

अब सम्यग्दृष्टि की दशा का विशेष वर्णन करते हैं-

'स्वारथ के साचें'- स्व पदार्थ आत्मा की यथार्थ पहिचान करके सम्यग्दृष्टि हुए हैं। अपने स्वरूप का ज्ञान करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव नारकी, मनुष्य, तिर्यंच और देव इन चारों गतियों में होते हैं। अभी तो लोगों को सम्यक्त्व के सच्चे स्वरूप की भी खबर नहीं है। वे मानते है कि देव-शास्त्र-गुरु को मानो बस! हो गया सम्यक्त्व; किन्तु भाई! यह तो शुभराग है। समकित अर्थात् धर्म की प्रथम सीढ़ी। अपने ज्ञान में आत्मा का यथार्थ प्रतिभास हो और यथार्थ श्रद्धासहित आत्मानुभव हो उसे सम्यक्त्व कहते हैं जो कि सच्चा धर्म है। भगवान की सेवा, पूजा करने से या परजीवों की दया करने से धर्म नहीं होता; क्योंकि धर्म कभी भी पर के आश्रय से नहीं होता, स्वाश्रय से ही सदैव धर्म होता है।

धर्मी 'परमारथ के साचें' अर्थात् मोक्षरूप परम पदार्थ के प्रेमी हैं। परम+अर्थ अर्थात् मोक्ष। जैन धर्म में चार पदार्थ कहे हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म माने पुण्य, अर्थ माने पैसा, काम माने विषय-भोग और मोक्ष अर्थात् आत्मा की पूर्ण दशा - ये परम पदार्थ हैं। विकारीदशा का नाश होकर पूर्ण निर्विकारीदशा प्रकट होना मोक्ष है। धर्मी को ऐसे परम पदार्थ मोक्ष का प्रेम है, अत: वह उसको साधता है।

धर्म की प्रथम शुरुआत वाले धर्मी हृदय के सच्चे होते हैं। इसकारण वे वचन भी सत्य ही बोलते हैं। ऐसे धर्मी -वीतरागता को साधनेवाले धर्मी ही वास्तविक जैनमती हैं। वीतराग भगवान द्वारा प्रतिपादित वीतराग जैनधर्म को साधते हैं, अत: जैनमती हैं।

किसी भी सम्यक् विवक्षावाली बात का विरोध धर्मी के ज्ञान में नहीं होता। धर्मी समस्त नयों के ज्ञाता होते हैं, अत: सत्य के किसी भी अंश में उन्हें विरोध नहीं होता। धर्मी को पर्यायबुद्धि अर्थात् शरीर या एक समय की पर्याय में अहंबुद्धि नहीं होती। धर्मी को द्रव्यबुद्धि होती है। अनादि से मैं शरीर हूँ, मैं राग हूँ, राग का

जाननेवाला हूँ- ऐसी पर्यायबुद्धि थी जो कि भ्रमबुद्धि थी। धर्मी ने उसका नाश करके निज द्रव्य में अहं स्थापित किया है।

धर्मी 'आतम गवेषी'- अर्थात् आत्मा के खोजक हैं। राग के खोजक नहीं। ऐसे धर्मी 'न गृहस्थ है और न यति हैं'। गृहस्थदशा में दिखते हैं, पर सचमुच गृह को निज मानते नहीं हैं; अत: गृहस्थ भी नहीं और अणुव्रत-महाव्रत नहीं; अत: यति भी नहीं हैं। यति तो उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा के आनंद का जतन है। चतुर्थ गुणस्थानवाले धर्मी गृहस्थ भी नहीं और यति भी नहीं हैं। तथापि देव और इन्द्रों द्वारा पूज्य (आदरणीय) है। पूज्य हैं अर्थात् इन्द्र भी उनकी प्रशंसा करता है, प्रशंसा योग्य हैं।

'रिद्धि, सिद्धि, बुद्धि दीसे घट में प्रकट सदा'- जिसे सदैव अपने हृदय में आत्मा की सिद्धि है, उसे बाहर की किसी रिद्धि-सिद्धि की आकांक्षा नहीं होती; किन्तु मैं पूर्ण कैसे होऊँ! पूर्ण शुद्ध कैसे होऊँ! ऐसी सिद्धि की भावना है। उस तरफ धर्मी की बुद्धि है। धर्मी पैसे से अपनी सिद्धि नहीं मानते। जड़ पदार्थ तो अपनी क्रियावती शक्ति से आते-जाते हैं, उनसे आत्मा की सिद्धि नहीं होती। पैसे को रखना या छोड़ना अपने अधिकार क्षेत्र में नहीं है।

आत्मा की शान्ति और ज्ञान- आनंद ही आत्मा की रिद्धि है। स्त्री, पुत्र, धनादि एवं विशाल प्रासाद ये - धर्मी की रिद्धि नहीं हैं, क्योंकि ये अपनी वस्तुयें ही नहीं हैं। अपनी वस्तु जो प्रकट हुई हैं, वही अपनी रिद्धि है और उसमें वृद्धि होना ही अपनी वृद्धि है। लोगों को कुछ धनादि की वृद्धि में अपनी वृद्धि लगती है, किन्तु भाई! यह तेरी वृद्धि नहीं हैं। धर्मी को तो अपने अंतर में ही रिद्धि, सिद्धि और वृद्धि दिखती है।

धर्मी तो अन्तर की लक्ष्मी के लक्षपती हैं। अजाँची अर्थात् बिना माँगी, अपनी अंतर लक्ष्मी के पति है, स्वामी हैं। 'दास भगवंत के, उदास रहे जगत सों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं'- धर्मी भगवान के दास हैं और जगत से उदास हैं, हमेशा सुखी हैं। धर्मी जहाँ भी हों वहाँ सदैव सुखी रहते हैं। ऐसे गुणोंवाले धर्मी को समकिती कहते हैं। इसप्रकार सम्यक्त्वी की स्तुति के दो काव्य हुए। क्रमश:

आत्मार्थी का पहला कर्त्तव्य (3)

निश्चय सम्यग्दर्शन का मार्ग

गतांक से आगे

छठवाँ संसार तत्त्व है। संवर आत्मा की निर्मल पर्याय है। शरीर को समेट कर बैठ जाना – वह कहीं संवर नहीं है। चैतन्य में एकाग्रता करने से सम्यग्दर्शन हो, वह प्रथम संवर है। कोई ऐसा माने कि पुण्य क्षयोपशमभाव है और उससे संवर होता है – तो वह मान्यता मिथ्या है। कर्म के उदय में युक्त होने से शुभवृत्ति का उत्थान हो, वह पुण्य है। वह पुण्य क्षयोपशमभाव नहीं, किन्तु उदयभाव है। पुण्य आस्रव है, वृत्ति का उत्थान है, उसे यदि उदयभाव न कहा जाये तो फिर किसे कहा जाये ? क्या अकेले पाप को ही उदयभाव कहना चाहिए। पुण्य और पाप – दोनों उदयभाव हैं, वे धर्म के कारण नहीं हैं। संवर तो पुण्य-पापरहित निर्मल भाव है, वह धर्म है। चैतन्यस्वरूप आत्मा में एकाग्रता से ही संवर होता है। ऐसा संवर भाव आत्मा में प्रगट होने से पूर्व उसकी प्रतीति करना, वह व्यवहारश्रद्धा है। जिनके ऐसा संवर भाव प्रगट हुआ हो, वही सच्चे गुरु हैं, ऐसा भाव प्रगट न हुआ हो, वे कुगुरु हैं। यानी संवर तत्त्व की पहिचान में सच्चे गुरु की प्रतीति भी साथ में आ जाती है। जिनमें संवर तत्त्व प्रगट न हुआ हो – ऐसे अज्ञानियों को जो गुरुरूप से माने, उस जीव को संवर तत्त्व की श्रद्धा नहीं है।

अहो ! एकसमय का संवर मुक्ति देता है। ऐसे संवर के बदले जो जड़ की क्रिया में और पुण्य में संवर मनाएं, वे सब कुदेव-कुगुरु हैं। कुगुरु सच्चे धर्म को लूटनेवाले लुटेरे हैं, उन्हें जो गुरुरूप से मानते हैं, वे जीव धर्म के लुटेरों का पोषण करते हैं, उनके कदापि धर्म नहीं हो सकता। जो पर से या पुण्य से संवर न मनाएं, किन्तु आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से संवर मनाएं और ऐसा संवर जिनके आत्मा में प्रगट हुआ हो, वही सच्चे गुरु हैं – ऐसे गुरु को ही गुरुरूप से माने, तब तो गुरु की श्रद्धा हुई कहलाती है। यह सब तो व्यवहार श्रद्धा में आ जाता है।

अहो ! अंतर में विचार करके इस प्रकार का ध्यान तो ज्ञान में करो ! यह आत्मा की अंतर क्रिया है। इसके अतिरिक्त बाह्य की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। पहले अंतर में परमार्थ स्वभाव के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा करना, सो

प्रथम संवर है और पश्चात् चारित्रदशा प्रगट होने से विशेष संवर होता है।

आत्मा पर का कर सकता है, पुण्य से संवर-धर्म होता है - ऐसा जो माने, उसे तो व्यवहार श्रद्धा भी सच्ची नहीं है, ऐसे जीवों को जो गुरुरूप से मानकर आदर करते हैं, वे जीव उस कुगुरु की अपेक्षा अधिक पापी हैं। मिथ्यात्व का सेवन सबसे महान पाप है। शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा करके उसमें स्थिर होना, सो संवर है। जिन्होंने ऐसा संवर भाव प्रगट किया हो और ऐसा ही संवर का स्वरूप बतलाते हों, वही सच्चे गुरु हैं। संवर भाव प्रगट होने से पूर्व उसका ज्ञान करना चाहिए। ऐसा समझे, तब नवतत्त्व की श्रद्धा हुई कहलाती है। इसके अतिरिक्त जो पुण्य से धर्म माननेवाले कुदेव-कुशास्त्र को माने, उसे नवतत्त्व की श्रद्धा भी नहीं है, इससे उसे व्यवहारधर्म भी प्रगट नहीं हुआ, उसे आत्मा का परमार्थ धर्म नहीं होता।

अहो ! यह सूर्य जैसी स्पष्ट बात है। अंतर में बराबर विचार करे तो आत्मा में प्रकाश हो जाये। पूर्व के विपरीत विकारों के साथ इस बात का मेल नहीं बैठ सकता। पूर्व को पकड़ छोड़कर, मध्यस्थ होकर पात्रता से विचार करे तो अंतर में यह बात जम सकती है। यह बात समझे बिना आत्मा का कल्याण या धर्म नहीं होता।

सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित नव तत्त्वों को रागमिश्रित विचार से मानने का भी जिनके अवकाश नहीं हैं और कुगुरुओं के कहे हुए तत्त्वों को मानते हैं, उन्हें अभेद आत्मा की ओर ढलकर परमार्थश्रद्धा नहीं हो सकती। नव तत्त्वों का विचार करने से भेद पड़ता है और राग होता है, इससे यह व्यवहारश्रद्धा है। नव तत्त्वों के विचार एक समय नहीं आते, क्योंकि वे तो अनेक हैं। उनमें एक तत्त्व के विकल्प के समय दूसरे तत्त्वों का विकल्प नहीं होता, इससे नव तत्त्वों के लक्ष्य से भेद और क्रम पड़ता है, परन्तु निर्विकल्प दशा नहीं होती। भूतार्थ आत्मा में एकपना है, वह एक समय में अखण्डरूप से प्रतीति में आता है और उसके लक्ष्य से ही निर्विकल्प दशा होती है। लेकिन ऐसी निर्विकल्प दशा के लिए आत्मोन्मुख होने से पूर्व नव तत्त्व के विकल्प आये बिना नहीं रहते। नव तत्त्वों के क्रम-विचार में भी जो नहीं आया, उसे उस क्रम का विचार छोड़कर अक्रमरूप आत्मस्वभाव की एकता की श्रद्धा नहीं होती।

प्रथम नव तत्त्व की श्रद्धा करके, उन नव के भेदों का विचार छोड़कर अभेद

चैतन्य द्रव्य की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शनरूपी संवर धर्म प्रगट होता है। संवर तत्त्व की श्रद्धा में सच्चे गुरु कैसे होते हैं, उनकी भी श्रद्धा आ जाती है। संवर तत्त्व को धारण करनेवाले ही सच्चे गुरु हैं। जो पुण्य को संवर तत्त्व मानता है अथवा तो देह की क्रिया को संवर तत्त्व मानता है, वह सच्चा गुरु नहीं है। इस प्रकार संवरादि तत्त्वों को और सच्चे गुरु को पहिचाने, तब तो व्यवहार श्रद्धा होती है, वह पुण्यभाव है और उससे विरुद्ध कुदेव-कुगुरु को माने अथवा तो पुण्य को संवर माने, उसे तो मिथ्यात्व के सेवन का पापभाव है, उसे धर्म नहीं होता। भोजन का त्याग किया, उससे उपवास या संवर होना मान ले, उसे संवर तत्त्व की खबर नहीं है और जिसकी एक तत्त्व में भूल हो, उसकी नव तत्त्वों में भूल होती है। सिद्ध परमात्मा जैसे अपने आत्मस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें रागरहित स्थिर होना, वह संवर धर्म है - ऐसे संवरादि नव तत्त्वों की विकल्पसहित श्रद्धा, वह व्यवहारश्रद्धा है और नवतत्त्व के विकल्परहित होकर एक अभेद आत्मा की प्रतीति और अनुभव करना, वह यथार्थ सम्यग्दर्शन है - यही प्रथम धर्म है। ●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक तीन

आगामी कार्यक्रम

दशलक्षण महापर्व

आगामी दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर दिनांक **3 सितम्बर से 12 सितम्बर 2019** तक विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे। इस अवसर विधान-पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन, स्वाध्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का लाभ प्राप्त होगा।

विशेष वक्ता—डॉ. विवेक जैन, छिंदवाड़ा

जो भी साधर्मी इस कार्यक्रम में रहकर धर्मलाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे सादर आमन्त्रित हैं। यहाँ पर आवास एवं भोजन की व्यवस्था है। कृपया अपने आगमन की अग्रिम सूचना अवश्य प्रदान करें।

सम्पर्कसूत्र : तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग,
हनुमान चौकी, सासनी-204216 (हाथरस)
मोबा. 9997996346 कार्या० (अशोक जैन); 9756633800 (सुधीर शास्त्री)

श्री प्रवचनसार गाथा 271 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का प्रवचन

संसारतत्त्व

गतांक से आगे

संसार कहाँ है ? उसे बतलाकर यह बताया है कि वह कैसे दूर हो। भाई ! तेरी विपरीत मान्यता से ही संसार है, वह अपने स्वभाव की सच्ची श्रद्धा से दूर होगा। न तो बाह्य में संसार है और न बाह्य वस्तुओं को छोड़ने से वह छूटता है। छह महीने के उपवास करके खड़ा-खड़ा सूख जाये और भीतर मंदराग से धर्म माने तथा ऐसा माने कि आहार मैंने छोड़ा है - तो वह जीव संसारतत्त्व का सेवन करनेवाला है। अज्ञानियों की दृष्टि बाह्य संयोग पर है, इससे वे बाह्य क्रिया देखकर उससे धर्म मानते हैं, परन्तु अंतरदृष्टि से देखनेवाले ज्ञानी कहते हैं कि वे जीव विपरीत मान्यता से अधर्म का ही सेवन करते हैं।

मैं चैतन्यबिम्ब ज्ञायकमूर्ति हूँ, आहार मेरे स्वरूप में है ही नहीं - इससे उसे ग्रहण करने या छोड़नेवाला मैं नहीं हूँ - इसप्रकार ज्ञानानन्दस्वभाव का भान करके उसमें लीन रहने से राग की उत्पत्ति ही न हो और आहार का संयोग उसके अपने कारण न हो, उसका नाम उपवास है। उसके बदले बाह्य क्रिया में उपवास और धर्म मनाएँ, वे मिथ्यादृष्टि संसारतत्त्व हैं। वे भले ही द्रवयलिंगी श्रमण हों, तथापि अनंत भावान्तररूप परावर्तन को प्राप्त होते हुए अस्थिर परिणतिवाले रहेंगे। परिणति स्वरूप में स्थित हो तो वह मोक्ष का कारण है। लेकिन जहाँ स्वरूप का यथार्थ निर्णय नहीं है, वहाँ परिणति स्वरूप में स्थिर होगी कहाँ से ? इससे विकार में ही परिणति बदलती रहती है, वही संसार है। विकारीभाव एक-सा नहीं रहता, किन्तु प्रतिक्षण बदलता रहता है। कभी ऐसा शुभभाव करता है कि नवमें ग्रैवेयक का देव होता है और कभी अशुभभाव करके नरक में जाता है। क्षण में पुण्य और क्षण में पाप; कभी महान सम्राट होता है और क्षण में निगोद में जाता है, इसप्रकार विपरीत श्रद्धावाला जीव अनंत भावान्तर के परावर्तन में परिभ्रमण करता है, इससे वह संसारतत्त्व है।

व्रतादि का शुभराग बंध का कारण होने पर भी अज्ञानीजन उसे मुक्ति का

कारण मानते हैं। जिस भाव से बंधन हो, वह भाव मुक्ति का साधन कदापि नहीं हो सकता। पाँचवें-छठवें गुणस्थान में भी सात-आठ कर्म बंधते हैं, बंधनभाव के बिना (बंध के कारणरूप भाव के बिना) कर्म नहीं बंधते, तो वहाँ पाँचवें-छठवें गुणस्थान में कौन सा बंधन भाव है ? वहाँ जो व्रतादि का शुभभाव है, वह बंधन का भाव है, उससे कर्म बंधते हैं। तथापि उस बंधनभाव को मुक्ति का कारण मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् निगोद के भाव का सेवन करनेवाले संसारतत्त्व हैं।

छठवें गुणस्थान में भी सात या आठ कर्म बँधते हैं - ऐसा भगवान ने कहा है, तो वे किस भाव से बंधते हैं, अशुभभाव तो वहाँ होता नहीं है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो शुद्धभाव प्रगट हुआ है, वह बंधन का कारण होता नहीं है, इससे व्रतादि का जो शुभभाव है, उसी से कर्म बंधते हैं, इससे वह बंध का कारण है, और रागरहित ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके उसमें लीनता करना, वह कर्मों का काटने का-मुक्ति का कारण है। ऐसा होने पर भी वह उस राग को धर्म का या मुक्ति का कारण मानते हैं, वे अनवस्थित परिणतिवाले रहने के कारण संसारतत्त्व ही हैं। किसी की कृपा से जीव को मोक्ष प्राप्त नहीं होता और न किसी की अकृपा से वह संसार में भ्रमण करता है, मिथ्याश्रद्धा से जीव की अस्थिर परिणति को संसार कहा है।

आत्मा का वास्तविक ज्ञानमय स्वरूप है, उसका जिन्होंने निर्णय प्रगट नहीं किया, वे जीव भले ही त्यागी हों या भोगी - सब संसार में भ्रमण करनेवाले संसारतत्त्व हैं - ऐसा जानना इसप्रकार संसारतत्त्व का स्वरूप बतलाया। अब, इस संसार से विरुद्ध मोक्षतत्त्व का वर्णन 272वीं गाथा में करेंगे।●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक दूसरा

—: सूचना :—

तीर्थधाम मङ्गलायतन में द्वारा हुए कार्यक्रमों VCD / MP3 को आप द्वारा देख सकते हैं:—

आप Computer में Youtube पर MANGALAYATAN JAIN MANDIR सर्च करे, उसमें तीर्थधाम मङ्गलायतन पंचकल्याणक 2003; मङ्गलायतन विश्वविद्यालय पंच - कल्याणक 2010; मंगल बोधि VCD; मंगल कथा VCD; धन्य मुनिदशा VCD; मङ्गलायतन - एक आह्वान (परिचय); मुनि सुकुमाल कथा; महावीर पूजन आदि आप देख सकते हैं / DOWNLOAD कर सकते हैं।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
भगवान श्री एलाचार्य

यद्यपि 'एलाचार्य' नाम भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विविध नामों में से एक है। फिर भी ये एलाचार्य उनसे भिन्न महासमर्थ आचार्य भगवंत हैं।

यद्यपि आप स्वयं ने कोई ग्रंथ रचना नहीं की हैं; फिर भी जिसमें जिनधर्म के गंभीर रहस्य खुले, ऐसे धवलजी व जयधवलजी की रचना का एक प्रकार से आपको श्रेय दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि आपने धवलाजी के पूर्ण व जयधवलाजी के आद्यभाग के रचयिता भगवान वीरसेन स्वामी को सिद्धांत ग्रंथ की विद्या सिखाई। इतना ही नहीं, ये रचना करने का आदेश भी उन्हें दिया था। अत: आपकी कृपा के फल से ही धवलाजी व जयधवलाजी के रूप में वाङ्गमय जिनवाणी आज हमें संप्राप्त हुई है।

आप सिद्धांत के विशाल ज्ञाता थे व भगवान वीरसेनस्वामी के विद्यागुरु होने से उनके समकालीन थे। धवलाजी व जयधवलाजी से ज्ञात होता है, कि आपका सिद्धांत संबंधिता पाण्डित्य अत्यधिक था, तब ही तो आप भगवान वीरसेन स्वामी को यह शिक्षा प्रदान कर सके।

आचार्य इंद्रनंदि ने अपने श्रुतावतार में आपके संबंध में लिखा है कि आप चित्रकूट (हाल का चित्तौड़) नगर के निवासी थे व आपके पास में रहकर भगवान वीरसेनस्वामी ने सिद्धांतों का अध्ययन करके निबंधनादि आठ अधिकारों को लिखा है।

आप वात्सल्य की मूर्ति थे। अत: आपके वात्सल्यभाव की भगवान वीरसेनस्वामी ने भूरी-भूरी प्रशंसा की है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि भगवान वीरसेनस्वामी आपके अत्यंत स्नेहयुक्त कृपापात्र रहे होंगे।

यद्यपि आपने किसी भी ग्रंथ की रचना नहीं की थी, क्योंकि आपकी किसी भी कृति का उद्धरण आपके पश्चात्वर्ती किन्हीं भी आचार्यों ने नहीं दिया है, परंतु आपने भगवान वीरसेनस्वामी को सिद्धांत-शिक्षा दी होने से आप सिद्धांतों के पारगामी व मर्मज्ञ थे। चूँकि भगवान वीरसेनस्वामी ने जयधवला टीका में

मतभेदों का निर्देश करते हुए स्पष्ट लिखा है, कि भट्टारक एलाचार्य का उपदेश ही समीचीन होने से ग्राह्य है। इससे अनुमान लगता है कि आप वाचकगुरु थे व आपकी प्रतिभा अप्रतिम थी।

इतिहासकारों के आधार से यह ज्ञात होता है, कि आपका समय ई.स. ७७० के आस-पास का है।

सिद्धांतज्ञानदाता भगवान श्री एलाचार्यस्वामी को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री वीरसेनस्वामी

दिगम्बर आम्नाय में 'वीरसेन' नामक कई आचार्य हुए हैं, पर उन सबमें धवला टीका के रचयिता श्री वीरसेनस्वामी की निर्मल कीर्ति दिगम्बर आम्नाय में उज्ज्वल रूप से प्रकाशित हो रही है।

आप अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे। आपकी विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा आपके पश्चात्वर्ती आचार्यों ने तो की ही है, पर आपके समकालीन आचार्य जिनसेनस्वामी (प्रथम) ने भी स्व-पर पक्ष के विजेता आदि उपमाओं से आपको अलंकृत किया है।

आप जिनेन्द्र भगवान प्ररूपित सिद्धांतों के पारगामी होने से आपको षट्खंडागम की पूर्णरूपेण 72000 श्लोकप्रमाण धवला टीका व गुणधर आचार्य कृत कसायप्राभृत ग्रंथ की 20000 श्लोकप्रमाण टीका लिखी थी। आपके समाधिस्थ होने पर उस ग्रंथ की बाकी की 40000 श्लोकप्रमाण जयधवला टीका आचार्य जिसेनस्वामी (द्वितीय) ने पूर्ण की। एक व्यक्ति द्वारा एक लाख श्लोक प्रमाण यह टीका लिखने से निम्नोक्त यह निष्कर्ष निकलता है—

(1) जैसे भरत चक्रवर्ती की आज्ञा छहों खंडों में प्रवर्तित होती हुई लक्ष्मीवंतों को प्रसन्न करती थी, वैसे आचार्य भगवान वीरसेनस्वामी की मधुरवाणी, समस्त प्राणिओं को प्रमुदित करती हुई, आपकी कुशाग्रबुद्धिरूप आज्ञा समस्त विषयों में—सिद्धांत, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, काव्य, गणित व आगम आदि सर्व—विषयगामिनी थी अर्थात् आपकी वाणी का संचार छह

खंडरूप षट्खंडागम नामक परमागम के सब ही विषयों में निर्विवादरूप से मान्य था।

(2) आपकी प्रत्येक विषय की प्ररूपणा विस्तृत, दार्शनिकतापूर्ण व परम्परानुमोदन के साथ-साथ उस-उस विषय संबंधित वस्तु का स्वरूप, प्रकृति, गुण-दोष आदि की दृष्टि से तर्कपूर्ण और समालोचनपूर्ण थी। जिसमें अनुभवशीलता, विषय की प्रौढ़ता आदि देख उस समय के विद्वानों को सर्वज्ञ के सद्भाव विषयक शंका नष्ट हो गई थी। यत: जब एक छद्मस्थ व्यक्ति आगम द्वारा इतना बड़ा ज्ञानी हो सकता है, तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञानधारी सर्वज्ञ भगवान समस्त पदार्थों के ज्ञाता हो, इसमें कौन सा आश्चर्य है!!

(3) यद्यपि आप केवली व श्रुतकेवली न होने पर भी आपकी द्वादशांगी आगम प्रज्ञा को देख विद्वत्वर्ग आपको 'श्रुतकेवली' व 'प्रज्ञाश्रमणों में श्रेष्ठ' तक मानते थे और मानते हैं। आपकी प्रज्ञाशक्ति का दर्शन आपकी टीकाओं में पद-पद पर होता है।

(4) आप भट्टारक उपमारूप पदवी को प्राप्त केवली के समान सभी विद्याओं के पारगामी थे।

(5) आपने अपनी टीका में जिन-जिन विषयों की जो स्पष्टता की है, उसका खंडन कोई नहीं कर सकता है।

(6) जरूरत हुई तो स्पष्टता करते हुए आपने लिखा है, कि 'केवली और श्रुतकेवली के न रहने के कारण उपलब्ध सूत्रों में कौनसा सूत्र आवश्यक है और कौनसा आवश्यक नहीं, इसका निर्णय करना संभव नहीं है। अतएव सूत्र की अशातना के भय से दोनों ही सूत्रों की व्याख्या करना आवश्यक है। हमने तो गौतमस्वामी द्वारा प्रतिपादित अभिप्राय का कथन किया है।' इसी भाँति ऐसा भी आपने लिखा है, कि 'यदि ऐसा है, तो यह सूत्र है और यह सूत्र नहीं है, इसका कथन उपदेश पाकर वे करें कि, जो आगम में निपुण हैं। हम इस प्रसंग में कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि इसके संबंध में हमें उपदेश प्राप्त नहीं है।

पंचस्तूप संघ के अन्वय में आप आचार्य आर्यनंदी के शिष्य थे व आपके दादागुरु आचार्य चंद्रसेन थे। आपके विद्यागुरु भगवान एलाचार्य थे। एलाचार्य के

पास ही वीरसेनस्वामी ने सिद्धांत शिक्षा को ग्रहण किया था। आप स्वयं आचार्य जिसेन (द्वितीय) के गुरु थे।

चित्रकूट (चित्तौड़) निवासी भगवान एलाचार्य के पास सिद्धांतग्रंथों का अभ्यास करने के पश्चात् आप वटग्राम (वड़ोदरा) पधारे। वहाँ के [1]आनतेन्द्र द्वारा बनवाए हुए जिनालय में आपने बप्पदेव रचित षट्खंडागम व कसायपाहुड़ की व्याख्या देखी, जिससे प्रेरित होकर व अपने विद्यागुरु के आदेश को शिरोधार्य करके आपने प्रथम षट्खंडागम की प्राकृत व संस्कृत मिश्रित धवला टीका पूर्ण की। पश्चात् कसायपाहुड़ की टीका-जयधवला का प्रारंभ किया। उसमें प्रथम करीब 20000 श्लोक प्रमाण रचना के पश्चात् आप समाधिस्थ हुए। कहा जाता है कि, धवला व जयधवला टीका पावागढ़ अर्थात् वटग्राम के जंगलों में लिखी गई थी।

आपने अपनी टीका में ढेर सारे ग्रंथों के प्रमाण दिए हैं, उससे स्पष्ट होता है कि आप अत्यधिक आगमप्रिय व आगमाभ्यासी थे।

आपकी रचना शैली शंका-समाधानयुक्त, सरल, स्वच्छ, आडंबररहित, आगमप्रमाण, अनुभवपूर्ण तर्क व न्याय से तटस्थतायुक्त थी। नाना प्रकार के विकल्प उठाकर विषय को प्रस्तुत कर अंत में आप निष्कर्ष निकालते थे। आपने विभिन्न दिशाओं से तथ्यों का चयनकर उदाहरणों द्वारा अपने पास में पाठक को शिष्यरूप से बैठाकर समझाते न हों, इस भाँति विषयबोध कराया है। साथ में आपने अपने अभिमत की पुष्टि के लिए प्रामाणिक व्यक्तियों के मतों का उद्धरण भी उपस्थित किया है। अत: आपकी रचना, टीकाग्रंथ होने पर भी स्वतंत्र रचना हो—ऐसी आपकी अद्भुत रचना शैली थी।

आपका समय ई. स. 770 से 827 तक का माना जाता है।

धवला-जयधवला टीकाकार भगवान आचार्य श्री वीरसेन स्वामी को कोटि-कोटि वंदन!

---

1. वड़ के पेड़ के आधिक्यता देख जिसे वट्टपुरी (वड़ोदरा) कहा जाता था। वह वड़ोदरा नगर उस समय पावागढ़ तक फैला हुआ था व आनतेन्द्र द्वारा बनवाए हुए जिनालय पावागढ़ में काफी थे।

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

देव-गुरु की पूजा से मानपोषण दुश्चरित्र है

अहिमाण-विस-समत्थं, यं च थुव्वंति देव गुरुणोयं।
तेहिं पि जइ माणो, हा! हा! तं पुव्व-दुच्चरियं ॥144॥

भावार्थ - अरिहन्तादि वीतराग हैं, उनकी पूजा, भक्ति एवं स्तुति आदि से मानादि कषायों की हीनता होती है परन्तु जो कोई जीव उनसे भी उल्टे अपनी मानादि कषायों को पुष्ट करे कि 'हम बड़े भक्त हैं, बड़े ज्ञानी हैं और हमारा बड़ा चैत्यालय है आदि' तो वे बड़े अभागे हैं ॥144॥

लोकाचार में प्रवर्तनेवाला जैन नहीं है

जो जिण आयरणाए, लोओ ण मिलेइ तस्स आयारे।
हा! हा! मूढ करिंतो, अप्पं कह भणसि जिणप्पणहं ॥145॥

भावार्थ - जैनियों की रीति तो अलौकिक है-लोक से न्यारी है, उसे ही दिखाते हैं। जैनी वीतराग को देव मानते हैं, लोग रागी-द्वेषी को देव मानते हैं; जैनी अपरिग्रही निर्ग्रन्थ साधु को गुरु मानते हैं, लोग परिग्रही सग्रन्थ को गुरु मानते हैं व जैनी अहिंसा-दया में धर्म मानते हैं, लोग यज्ञादि-हिंसा में धर्म मानते हैं इत्यादि और भी लोक से उल्टी रीति जैनियों की है सो लौकिक जो कुदेव हैं, उनके पूजनादि की कोई प्रवृत्ति करवाए एवं उनका प्रचार करे तो वह जैनी कैसा! तात्पर्य यह है कि वह जैन नहीं है ॥145॥

जिननाथ की बात को माननेवाले विरल हैं

जं चिय लोओ मण्णइ, तं चिय मण्णंति सयल लोया वि।
जं मण्णइ जिणणाहो, तं चिय मण्णंति किवि विरला ॥146॥

भावार्थ - अज्ञानी जीवों को जो धन-धान्यादि उत्कृष्ट भासित होते हैं, वे तो सभी मोही जीवों को स्वयमेव उत्कृष्ट भासित होते ही हैं परन्तु वीतराग भाव को उत्कृष्ट व हित माननेवाले बहुत थोड़े हैं क्योंकि जिनकी भली होनहार है अर्थात् निकट संसार है और मोह मन्द हो गया है, उनको ही वीतरागता रुचती है ॥146॥

साधर्मी के प्रति अहितबुद्धि वाला मिथ्यावी है

साहम्मि आउ अहिओ, बंधु सुआइसु जाण अणुराओ।
तेसिं ण हु सम्मत्तं, विण्णेयं समयणीईए॥147॥

भावार्थ - सम्यक्त्व के अंग तो वात्सल्यादि भाव हैं सो जिसे साधर्मी के प्रति प्रेम नहीं है, उसे सम्यक्त्व नहीं है। पुत्रादि से प्रीति तो मोह के उदय से सब ही जीवों को होती है, उसमें कुछ भी सार नहीं है - ऐसा जानना॥147॥

जिनदेव का ज्ञाता लोकाचार को कैसे माने

जइ जाणसि जिणणाहो, लोयायारव्व पक्ख पउहूओ।
ता तं तं मण्णंतो, कह मण्णसि लोय-आयारं॥148॥

भावार्थ - जिनमत तो अलौकिक है यदि उसे मानते हो तो उससे विरुद्ध मिथ्यादृष्टिओं की रीति को मत मानो—ऐसा गाथा का भाव जानना॥148॥

मिथ्यात्व से ग्रस्त जीवों का कौन वैद्य है

जो मण्णे वि जिणिंद, पुणो वि पणमंति इयर देवाणं।
मिच्छत्त-सण्णिवाइय, धत्थाणं ताण को विज्जो॥149॥

भावार्थ - अन्य जीव तो मिथ्यादृष्टि ही हैं परन्तु जो जीव जैन होकर भी रागादि दोषों सहि अन्य देवों को पूजते हैं एवं प्रणाम करते हैं वे महा मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्यात्व के नाश का उपाय जिनमत है और जिनमत को पा करके भभ जिनका मिथ्यात्व रूपी रोग न जाए तो फिर उसका कोई दूसरा उपाय ही नहीं है॥149॥

धर्मायतनों में भेद डालना जिनमत की रीति नहीं

एगो सुगुरु एगो वि, सावगो चेइयाइं विविहाणि।
तत्थय जं णिदव्वं, परस्परं तं ण विच्चंति॥150॥
ते ण गुरु णो सावय, ण पूय होइ तेहि जिणणाहो।
मूढाणं मोहठिइ, जाणं जइ समय-णिउणेहिं॥151॥

भावार्थ - कितने ही जीव चैत्यालय आदि में भेद मानते हैं कि वे चैत्यालयादि तो हमारे हैं और ये दूसरों के हैं—ऐसा मानकर परस्पर भक्ति नहीं करते तथा धन भी खर्च नहीं करते वे मिथ्यादृष्टि हैं क्योंकि इस प्रकार का भभद डालना जिनमत की रीति नहीं है॥150-151॥

साभार : उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

समाचार-सार

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों की सोनगढ़ यात्रा

मङ्गलायतन : 21 जून से 27 जून 2019 तक प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों की सोनगढ़ यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई। इस यात्रा के सारथी श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के प्राचार्य डॉ. सचिन्द्र शास्त्री के निर्देशन में हुई।

यह यात्रा तीर्थधाम मङ्गलायतन से प्रारम्भ होकर मथुरा चौरासी, बड़ौदरा, पावागढ़, सोनगढ़, एकलिया पार्श्वनाथ, पालीताना, उमराला, चैतन्यधाम, अहमदाबाद आदि स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री एवं तद्भक्त बहिनश्री के मुख्य स्थलों के दर्शन करती हुई अत्यन्त प्रभावना के साथ सम्पन्न हुई।

इस यात्रा में विशेष योगदान श्री हंसमुखभाई बोरा, सोनगढ़; ब्रह्मचारिणी आशाबेन, सोनगढ़; ब्रह्मचारिणी कोकिलाबेन, सोनगढ़; पण्डित फूलचन्द शास्त्री, सोनगढ़; श्री कुमुदभाई, सोनगढ़; श्री अतुलभाई गाँधी, सोनगढ़; श्री दिलीपभाई, उमराला; पण्डित सचिन शास्त्री, चैतन्यधाम का लाभ मिला।

इस बार सोनगढ़ में विद्यार्थियों को पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा एवं पूजन, तीन समय गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन तथा कक्षाओं का विशेष लाभ प्राप्त हुआ। सोनगढ़ में पण्डित सोनू शास्त्री एवं विद्यार्थियों के साथ तथा चैतन्यधाम के विद्यार्थियों के साथ विशेष गोष्ठी का लाभ प्राप्त हुआ।

ब्रह्मचारिणी आशाबेन एवं ब्रह्मचारिणी कोकिलाबेन ने पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्री के जीवन के बारे में जानकारी दी। प्रमुख श्री हंसमुखभाई ने सोनगढ़ के नये आयतन बाहुबली मन्दिर एवं जम्बूद्वीप के बारे में विद्यार्थियों को बताया।

प्रत्येक स्थान पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन एवं स्वाध्याय का लाभ मिला एवं मङ्गलार्थियों द्वारा तत्त्वचर्चा का भी लाभ मिला। सभी स्थानों पर साधर्मियों ने मङ्गलार्थियों की बहुत-बहुत प्रशंसा की। **इस यात्रा में श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई एवं श्री अजित जैन, बड़ोदरा परिवार का विशेष योगदान प्राप्त हुआ।**

तीर्थधाम मङ्गलायतन में तत्त्व प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन : बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन का प्रवास वर्तमान में तीर्थधाम मङ्गलायतन में चल रहा है। उनके द्वारा पवनजी केस्वास्थ्य को देखते हु प्रवचनसार एवं सर्वार्थसिद्धि का लाभ को प्राप्त हो रहा है। इसी शृंखला में 09 जून से 17 जून तक पण्डित बाबूभाई मेहता फतेपुर और 04 जुलाई से 07 जुलाई तक बाल

ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी का मङ्गलार्थी छात्रों को लाभ प्राप्त होगा। इसी अवसर पर ब्रह्मचारी धवलजी के द्वारा तत्त्वज्ञान का लाभ विद्यार्थियों को प्राप्त हो रह है।

मङ्गलायतन में यूएसए के छात्रों द्वारा जैनदर्शन पर सेमीनार

मङ्गलायतन : 30 जून 2019 को प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी इन्टरनेशनल समर स्कूल फॉर जैन स्टेडीज ग्रुप द्वारा यू.एस.ए. के विभिन्न विश्वविद्यालयों के 10 छात्र-छात्राओं द्वारा जैनदर्शन पर एक सेमीनार का आयोजन हुआ।

मङ्गलायतन में सर्व प्रथम छात्रों का स्वागत, मङ्गलायतन का भ्रमण एवं मङ्गलार्थी शुद्धातम जैन, भीलवाड़ा द्वारा समयसार विषय पर अंग्रेजी में वक्तव्य प्रदान किया गया। इस अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन के सभी विद्वान एवं मङ्गलार्थी उपस्थित थे एवं मङ्गलायतन विश्वविद्यालय से डॉ. सिद्धार्थ जैन, मयंक जैन एवं अन्य प्रोफेसर उपस्थित थे।

वैराग्य समाचार

जलगाँव : पंडित मधुकरभाई जलगाँव का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पूज्य गुरुदेवश्री के समय के आत्मार्थी विद्वान हैं। आप गुरुदेव के टेप लेकर गाँव-गाँव जाते थे और टेप प्रवचन सुनवाते थे। बाद में पंच कल्याणक महोत्सव विधि-विधान में सहयोगी विद्वान के रूप में तथा दशलक्षण पर्व में भी जाते थे।

बिजौलियां : कन्हैयालालजी लुहाड़िया का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों-ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि सोनगढ़ के दर्शन करते मङ्गलार्थी

यू.एस.ए. के विद्यार्थी मङ्गलायतन दर्शन करते

उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ

(संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश)

के तत्त्वावधान में **वीर शासन जयन्ती 2019** के उपलक्ष्य में

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी : जुलाई 21 एवं 22, 2019

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अहिंसा एवं सत्य की उपादेयता

आयोजक : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

आयोजनस्थल : तीर्थधाम मंगलायतन, आगरा-अलीगढ़ मार्ग, सासनी, हाथरस

सह-संयोजक	समन्वयक	संयोजक
सुधीरकुमार जैन	प्रो. (डॉ.) अभयकुमार जैन	डॉ. योगेशचन्द्र जैन

विशेष कार्याधिकारी, उ.प्र. जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ

डॉ. राकेश सिंह

प्रकाशन तिथि - 14 जुलाई 2019 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 जुलाई 2019
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

बारम्बार आनन्द के झूले में झूलते हैं मुनिराज

मुनिदशा अर्थात् साधु परमेष्ठी की दशा, तीनों काल बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थ ही होती है। बाह्य में वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता और अन्तर में तीन कषाय के अभावपूर्वक वीतरागी शान्तदशारूप चारित्र होता है। अन्तर में राग का सङ्ग नहीं और बाह्य में वस्त्र का सङ्ग नहीं। मुनिदशा धारण करके तीर्थङ्कर भगवान ध्यान में लीन होते हैं और तुरन्त ही चौथा मन:पर्यय ज्ञान प्रगट होता है। जब तक केवलज्ञान प्रगट न करें, तब तक बारम्बार छठवें-सातवें गुणस्थान में आते हैं और अतीन्द्रिय निर्विकार चिदानन्दस्वरूप में बारम्बार लीनता का स्वाद लेते हुए आनन्द के झूले में झूलते हैं। *(आत्मधर्म, अङ्क-9, वर्ष 1961, पृष्ठ-349)*

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com